सामाजिक न्याय में डॉ. भीमराव अंबेडकर की भूमिकाः एक अध्ययन

डॉ. धीरेन्द्र पाल सिंह

सहायक आचार्य, इतिहास
राजकीय महाविद्यालय, सादड़ी

सारांशः सामाजिक न्याय की अवधारणा एक बहुत ही व्यापक शब्द है, इसमें एक व्यक्ति के नागरिक अधिकार तो है ही, साथ ही सामाजिक (भारत के परिप्रेक्ष्य में जाति एवं अल्पसंख्यक) समानता के अर्थ का भी निहितार्थ है। यह निर्धनता, साक्षरता, छुआछूत, महिला, पुरुष हर पहलुओं को और उसके प्रतिमानो को इंगित करता है। सामाजिक न्याय की अवधारणा का मुख्य अभिप्राय यह है कि नागरिक – नागरिक के बीच सामाजिक स्थिति में कोई भेदभाव ना हो। सभी को विकास के समान अवसर उपलब्ध हो सामाजिक न्याय से तात्पर्य है कि सामाजिक जीवन में सभी मनुष्यों के स्वाभिमान को स्वीकार किया जाए स्त्री–पुरुष, गोरे–काले या जाति, धर्म क्षेत्र इत्यादि के आधार पर किसी व्यक्ति को छोटा–बडा या ऊंच–नीच ना माना जाए। शिक्षा तथा विकास के अवसर सबको समान रूप से उपलब्ध हो द्य हमारा समाज अंबेडकर की न्याय की संकल्पना को अभी पूरी तरह से अपना नहीं पाया क्योंकि इसने जाति और पितृसत्ता के श्रेणी क्रमो से अपने आप को मुक्त करने से इंकार कर दिया।

मूल शब्दः अम्बेडकर, सामाजिक न्याय, महिला, छुआछूत, जाति, असमानता, समानता, श्रमिक, नागरिक अधिकार

प्रस्तावनाः–

भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए किए गए संघर्षों का इतिहास डॉ. भीमराव अंबेडकर के योगदान का उल्लेख किए बिना कभी भी पूरा नहीं हो सकता है, डॉ. अंबेडकर एक संघर्षशील व्यक्तित्व के व्यक्ति थे जिन्होंने सबको राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय दिलाने के लिए संघर्ष किया। डॉ आंबेडकर आधुनिक युग के संघर्षरत उन महापुरुषों में से एक थे जिन्होंने समाज में प्रचलित व्यवस्था और वैचारिकी की ना तो कभी अधीनता स्वीकार की और ना ही उससे समझौता किया है, वह परंपरागत रूढ़िवादी समाज के अन्याय एवं शोषणकारी नीतियों के विरुद्ध जीवन पर्यंत संघर्ष करते रहे उन्होंने समाज के सबसे कमजोर वह निचले तबके में रहने वाले अछूत, अस्पृश्य को उनके नारकीय जीवन का एहसास कराया जो कि वह सदियों से जी रहे थे। डॉ. अंबेडकर का कार्यक्षेत्र मुख्यतः स्वतंत्रता, समानता, लोकतंत्र एवं सामाजिक न्याय के मुद्दों से जुड़ा रहा। उनका न्यायसंगत समाज तीन मौलिक सिद्धांतों पर आधारित हैं– स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व। डॉ. अंबेडकर के सामाजिक न्याय का विचार मूलतः एक ऐसी जीवन पद्धति का समर्थक है, जो पारस्परिक मान–सम्मान, गरिमापूर्ण जीवन, मैत्रीभाव, समान नागरिक होने की उत्कंठा तथा राष्ट्रीय जीवन में न्यायोचित भागीदारी को सुनिश्चित करें । जिसके लिए उन्होंने संविधान के माध्यम से स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व पर आधारित एक न्याय पूर्ण सामाजिक ढांचे की आधारशिला रखी।

एक विचार के रूप में सामाजिक न्याय की बुनियाद सभी मनुष्यों को सामान मानने के आग्रह पर आधारित है। इसके मुताबिक किसी के साथ सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। हर किसी के पास इतने न्यूनतम संसाधन होने चाहिए कि वह 'उत्तम जीवन' की अपनी संकल्पना को धरती पर उतार पाये। विकसित या विकासशील दोनों तरह के देशों में राजनीतिक सिद्धांत के दायरे में सामाजिक न्याय की अवधारणा और उससे जुड़ी व्यक्तियों का प्रमुखता से प्रयोग किया जाता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उसका अर्थ स्पष्ट ही होता है। सिद्धांतकारों ने इसको अपने अपने तरीके से इस्तेमाल किया है। व्यवहारिक राजनीति के क्षेत्र में भी भारत जैसे देश में सामाजिक न्याय का नारा वंचित समूह की राजनीतिक गोलबंदी का एक प्रमुख आधार रहा है।

बाबा साहब भीमराव अंबेडकर ने भारतीय इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, मानव शास्त्र, दर्शनशास्त्र, एवं कानून इत्यादि विषयों का गहन अध्ययन किया, समाज में प्रचलित कुरीतियों को उन्होंने देखा ही नहीं अपितु स्वयं झेला था, उनके बारे में सोचा और दृढ़ निश्चय करके उनके विरुद्ध विद्रोह किया। डॉ. अंबेडकर ने अपने जीवन में के अंततक अनवरत संघर्ष के बाद देश को बताया कि यदि यह सामाजिक कुरीतियां दूर नहीं हुई तो भविष्य में भारत के कितने भाग होंगे और उसका क्या स्वरूप होगा यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता । डॉ. अंबेडकर ने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद देश में व्याप्त एक सामाजिक अन्याय के रहस्य को समझा कि आर्थिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रता तब तक व्यर्थ होगी जब तक कि समाज में सामाजिक न्याय व्याप्त ना हो। न्याय समाज दर्शन की ऐसी बुनियादी धारड़ा हैं जिस पर सामाजिक

चिंतन के आरम्भ से ही विचार होता रहा है। इतिहास में न्याय की अनेक प्रकार से व्याख्या हुई हैं। सत्तारूढ़ व्यक्तियो ने न्याय की परिभाषा सदा ही स्वार्थ की दृष्टि से की हैं।

डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्व के सामाजिक क्रांतिकारियों की श्रेणी में अग्रणी रहे इस महान युगपुरुष ने भारतवर्ष में प्रचलित हजारों वर्षों से चली आ रही सामाजिक कुरीतियों एवं सामाजिक अन्याय को जड़ से समाप्त कर हजारों वर्षों से त्रासित पद्दलितों और अपमानित अस्पृश्यों, स्त्रियों को सामाजिक न्याय दिलाया । डॉ. अंबेडकर देव दासियों को समता समानता एवं बंधुत्व के आदर्शों का मार्ग दिखा कर वर्ग विहीन एवं जातिविहीन आदर्श समाज की स्थापना के उद्देश्य से घोर विषम परिस्थितियों में जीवन पर्यन्त कड़ा संघर्ष किया।

सामाजिक न्याय की संकल्पनाः–

सामाजिक न्याय की अवधारणा एक बहुत ही व्यापक शब्द है, इसमें एक व्यक्ति के नागरिक अधिकार तो है ही, साथ ही सामाजिक (भारत के परिप्रेक्ष्य में जाति एवं अल्पसंख्यक) समानता के अर्थ का भी निहितार्थ है। यह निर्धनता, साक्षरता, छुआछूत, महिला, पुरुष हर पहलुओं को और उसके प्रतिमानो को इंगित करता है। सामाजिक न्याय की अवधारणा का मुख्य अभिप्राय यह है कि नागरिक – नागरिक के बीच सामाजिक स्थिति में कोई भेदभाव ना हो। सभी को विकास के समान अवसर उपलब्ध हो सामाजिक न्याय से तात्पर्य है कि सामाजिक जीवन में सभी मनुष्यों के स्वाभिमान को स्वीकार किया जाए स्त्री–पुरुष, गोरे–काले या जाति, धर्म क्षेत्र इत्यादि के आधार पर किसी व्यक्ति को छोटा–बडा या ऊंच–नीच ना माना जाए। शिक्षा तथा विकास के अवसर सबको समान रूप से उपलब्ध हो और सब लोग मनुष्य–मनुष्य के नाते मिल–जुलकर साहित्य, कला, संस्कृति और तकनीकी साधनों का उपभोग और उपयोग कर सकें।4 इस प्रकार सामाजिक न्याय का सरोकार वस्तुओं और सेवाओं के न्यायोचित वितरण से है। सामाजिक न्याय का अंतिम लक्ष्य है कि समाज का कमजोर वर्ग जो अपना पालन पोषण करने के योग्य ना हो उसका भी विकास में भागीदारी सुनिश्चित हो, जैसे विकलांग, दलित, अनाथ, अल्पसंख्यक, महिलाएं इत्यादि जो अपने को असुरक्षित ना महसूस करें। संसार की सभी आधुनिक न्याय प्रणाली प्राकृतिक न्याय की कसौटी पर खरा उतरने की चेष्टा करती है।

सामाजिक न्याय प्रत्येक क्षेत्र में उचित वितरण की मांग करता है ताकि अवसर एवं संसाधन तक सबकी पहुंच हो सके। इसका प्रश्न तब से अस्तित्व में आया जब से सामाजिक अन्याय के विरोध की शुरुआत हुई। आधुनिक युग में न्याय पूर्ण समाज की रचना के लिए देश में जिन सुधारकों ने प्रयास किया उनमें से अधिकांश को इस कार्य के लिए प्रेरणा परानुभूतिवश मिली केवल डॉ. अंबेडकर ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने यह प्रेरणा स्वानुभूतिवश मिली। अछूत परिवार में जन्म लेने के कारण सामाजिक भेदभाव और तिरस्कार की जो पीड़ा डॉ. अंबेडकर ने सहन की थी वह अन्य ने नहीं की थी। इसलिए सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष विशेष रूप से दलितों के उद्धार के लिए संघर्ष को उन्होंने अपने जीवन का ध्येय बनाया। किसी भी समाज में स्वतंत्रता, समानता व न्यूनतम से वंचित लोग सामाजिक न्याय से वंचित होते हैं। सामाजिक न्याय में प्रायः सुनिश्चित किया जाता है कि नागरिकों के बीच सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव ना माना जाए और प्रत्येक व्यक्ति को आत्मविकास अवसर सुलभ हो। व्यक्ति का किसी भी रूप में शोषण ना हो और उसके व्यक्तित्व को एक पवित्र सामाजिक विभूति माना जाए, किसी लक्ष्य की सिद्धि के लिए साधन मात्र नहीं। सामाजिक न्याय की अवधारणा के मुख्य आधार स्तंभ निम्नवत हैं–

1. जातिय ऊंच–नीच को मिटाना।
2. धार्मिक मान्यता को खत्म करना।
3. लैंगिक भेदभाव को खत्म करना।
4. क्षेत्रीयता के भेदभाव को समाप्त करना।

डॉ. अंबेडकर का संपूर्ण जीवन संघर्ष सामाजिक न्याय की खोज की जीवन गाथा है, और संघर्ष में उन्हें सफलता भी मिली। वे संविधान सभा के प्रारूप समिति के अध्यक्ष और भारत के विधि मंत्री भी बने। डॉ. अंबेडकर की मान्यता थी कि सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र में बिना राजनैतिक लोकतंत्र अधूरा है। संविधान सभा में 29 अप्रैल 1947 को सरदार वल्लभ भाई पटेल के प्रस्ताव को स्वीकार कर संविधान सभा ने न केवल अस्पृश्यता को कानूनी रूप से समाप्त करने की घोषणा ही नहीं की बल्कि इसको दंडनीय अपराध भी करार दिया। उनका कथन था कि वे संविधान निर्मात्री सभा में और कुछ करने के लिए नहीं अपितु दलितों के हितों की रक्षा के लिए आते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह शोषण अन्याय तथा असमानता के अन्य मुद्दे पर मूकदर्शक थे, अपितु यह दलितों के प्रति उनके लगाव तथा उनकी दलितों के प्रति चिंता का द्योतक है।9 डॉ. अंबेडकर जब सामाजिक क्रांति के क्षेत्र में आए तो वह भारत के उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति थे, जिन्होंने देश एवं विदेश से विभिन्न शैक्षणिक उपाधियां प्राप्त की थी। उनके व्यक्तित्व में संसार के महान पुरुषों के व्यक्तित्व का मिश्रण था। उनके व्यक्तित्व में संसार के महान सामाजिक क्रांतिकारी ज्योतिबा फूले जैसे क्रांतिकारी के विचार समाहित, और गौतम बुद्ध जैसे धार्मिक–क्रांति का दृढ़ निश्चय था। डॉ आंबेडकर कई वर्षों तक जनजागरण के विभिन्न माध्यमों से समाज में जागृति लाकर सर्वप्रथम महाड तालाब का आंदोलन प्रारंभ किया जहां सदियों से पददलितों को इस तालाब का

पानी पीने के लिए भी नहीं मिल पाता था। इसी के साथ बाबा साहब द्वारा किया गया कालाराम मंदिर का आंदोलन भी सामाजिक क्रांति के इतिहास में स्मरणीय रहेगा। 1931 से 1933 तक लंदन में हुई तीनों गोलमेज कांफ्रेंस की चर्चा तो बहुत ही उल्लेखनीय है। जहां बाबा साहब ने एक ओर तो देश की स्वतंत्रता हेतु प्रभावी ढंग से वकालत की और दूसरी ओर भारत की मानव अधिकार विहीन जनता को सामाजिक न्याय दिलाने हेतु वैश्विक स्तर पर सर्वप्रथम सही स्थिति का वर्णन किया। बाबा साहब ने अपने जीवन के सभी रूपों में, जब विद्यार्थी रहे, जब वह वकील रहे अथवा जब मंत्री रहे सदैव सामाजिक अन्याय के विरुद्ध दृढ़विश्वास के साथ लड़ते रहे। महिला समाज को सामाजिक न्याय दिलाने की बात सर्वप्रथम बाबासाहेब ने ही हिंदू कोड–बिल को तैयार करके की, जो कि आज देश में अलग–अलग कानून द्वारा लागू किया गया है जिससे सदियों से अधिकार विहीन एवं अपमानित महिला समाज को समान अधिकारों के रूप में सामाजिक न्याय मिला है।

डॉ. अंबेडकर के सामाजिक न्याय के सिद्धांत को समझने से पहले परंपरागत सामाजिक न्याय व्यवस्था को जानना आवश्यक है। भारत की सामाजिक न्याय प्रणाली में मनुस्मृति के नियम कड़ाई से लागू होते हैं। मनुस्मृति में वर्णित ब्राह्मणवाद का आधार वर्ण व्यवस्था है। वर्ण व्यवस्था के बारे में डॉ. अंबेडकर का विचार है कि पुराने नाम पट्टोवाला यह चतुवर्ण मुझे कतई पसंद नहीं है, और वास्तव में मेरा रोम–रोम इसके प्रति विद्रोही भाव रखता है।5 वर्ण व्यवस्था कालांतर में जन्म आधारित होकर जाति व्यवस्था में परिवर्तन हो गयी जिससे पूरे समाज में जड़ता आ गई। जातिवाद भी सामाजिक न्याय में एक बड़ी बाधा है। जातिवाद से उत्पन्न पशुता और उदासीनता ही गुलामी का कारण है। जाति प्रथा श्रम विभाजन के साथ–साथ श्रमिकों का भी विभाजन का रूप लिए हुए हैं।6 जाति प्रथा को यदि श्रम विभाजन मान लिया जाए, तो यह स्वाभाविक विभाजन नहीं है, क्योंकि यह मनुष्य की रूचि पर आधारित नहीं है, अर्थात पहले से ही गर्भधारण के समय से ही मनुष्य का पेसा निर्धारित कर दिया जाता है।7 डॉ. अंबेडकर की मान्यता है कि सामाजिक न्याय के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध जातिप्रथा, ब्राह्मणवाद और हिंदू धर्म है। ब्राह्मणवाद से डॉ. अंबेडकर का आशय एक समुदाय के रूप में ब्राह्मणों की शक्ति हितों तथा विशेष अधिकारों से नो होकर स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना के निषेध से है। इस अर्थ में ब्राह्मणवाद सभी वर्गों में व्याप्त है मात्र ब्राह्मण तक ही सीमित नहीं है।8 इनके अनुसार अछूत की जड़ जाति व्यवस्था है तथा जाति का मूल वर्ण व्यवस्था है और दोनों ब्राह्मणवादी षड्यंत्र है। डॉ. अंबेडकर अस्पृश्यता के लिए ब्राह्मणवाद को जिम्मेदार ठहराते हैं। डॉ. अंबेडकर का मानना है कि अस्पृश्यता निवारण हेतु ब्राह्मणवाद एवं ब्राह्मण शास्त्रों की समाप्ति अति आवश्यक है। इस संदर्भ में सवर्ण उदारता तथा उनके हृदय परिवर्तन पर निर्भर नहीं रहा जा सकता है। तथाकथित अछूत ही अछूतों का नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं, जाति व्यवस्था में सुधार नहीं बल्कि इसके अंत की आवश्यकता है। अछूतों का उद्धार तब होगा जब उनके अधिकारों की रक्षा तथा शिकायतों के निवारण की कानूनी व्यवस्था की जाए, साथ ही राजनीतिक सत्ता में भी दलितों की भागीदारी सुनिश्चित होगी क्योंकि इनका भला तब तक नहीं होगा जब तक कानून को लागू करने वाला इन्हीं के बीच का ना हो ।

बाबा साहब डॉ. अंबेडकर द्वारा लिखित संविधान में निहित मानवतावादी अधिकारों की व्यवस्था ने सामाजिक अन्याय के सिद्धांतों को जड़ से उखाड़ फेंका। उनके संविधान के मूल तत्व समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय, लौकिक नैतिकता तथा देश की एकता और अखंडता है जिन्हें हम सामाजिक न्याय के सिद्धांत कह सकते हैं। ये सभी बातें आदर्श समाज की स्थापना के लिए आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है जो देश की एकता एवं अखंडता को बनाए रखेगी। भारतीय संविधान की प्रस्तावना अपनी स्थापना के दिन 26 जनवरी 1950 से ही सभी जातियों, पंथो और समुदायों के लोगों में यह भावना जागृत कर रहा है कि यहां के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता, सुलभ एवं सुरक्षित हो, और उन सभी के बीच व्यक्ति की गरिमा और देश की एकता– अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता को बढ़ाया जाए और साथ ही भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी, पंथ– निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक, गणराज्य बनाया जाए। यह नए समाज का द्योतक है। जिसके आधारभूत तत्व न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व हैं। इन्हीं को प्रभावी बनाने के लिए भारत का संविधान अपने पूर्ण स्वरूप एवं प्राविधानों सहित एक सामाजिक सिद्धांत है जो अनेक प्रथाओ तथा पंथो का निषेध करता है और साथ ही नए संदर्भ में मानवतावादी मूल्यों की स्थापना भी करता है।

शुरू से ही अंबेडकर मूलभूत अधिकारों को लागू करने के लिए उचित साधनों और प्रक्रिया के लिए प्रयत्नशील रहे । उनका कहना था कि केवल मूल अधिकारों की सूची बना देना काफी नहीं होगा और उन्हें मूलभूत कह देना भी काफी नहीं है । ये अधिकार हमारी मानसिक गढ़न का जरूरी हिस्सा बनना चाहिए।10 संविधान में मौलिक अधिकारों का ऐसा प्रावधान है कि यदि किसी नागरिक के अधिकारों का कोई व्यक्ति, संस्था या राज्य उल्लंघन करता है तो उसे न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। सभी भारतीय नागरिकों के लिए यह मौलिक अधिकार समान हैं। संविधान नागरिकों को समता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार, संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार, संवैधानिक उपचारों का अधिकार एवं अन्य ऐसे कई अधिकार देता है। इन अधिकारों में उन मानवतावादी मूल्यों की प्रधानता है जो सामाजिक न्याय के सार तत्व को प्रदर्शित करते हैं। डॉ. अंबेडकर की कृतियों में ;।ददपीपसंजपवद

व ि्बंजमद्ध जातिभेद का उच्छेद 1936 (Who Were The Shudras) शूद्र कौन थे 1946, (Untouchables) अस्पृश्य कौन और कैसे 1948, और (Budha and His Dhamma) बुद्ध और उनका धम्म 1957, विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इन कृतियों में मानवता के प्रति डॉ. अंबेडकर के गहरे सामाजिक सांस्कृतिक सरोकारों की झलक मिलती है। उन्होंने विशेष रूप से अस्पृश्य जातियों को अमानवीय जीवन से मुक्त कराने और उन्हें मानवता के साथ उचित गरिमा प्रदान करने के लिए निरंतर प्रयत्न किया। इसके अलावा उन्होंने समकालीन भारत में लोकतंत्र की समस्या का गहन विश्लेषण किया और संवैधानिक विधि की विशेषता पर भी विस्तृत प्रकाश डाला। सामाजिक न्याय की समस्या निसंदेह डॉ. अंबेडकर के चिंतन का सबसे प्रमुख विषय है, और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने काफी कड़ी मेहनत की। डॉ. अंबेडकर की सामाजिक न्याय की अवधारणा एक ऐसी जीवन पद्धति है जिसके अनुसार समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उचित स्थान मिलना चाहिए, लेकिन उचित स्थान का मतलब यह यहां जन्म आधारित सामाजिक प्रतिष्ठा से नहीं है, इसका सीधा अर्थ वह योग्यता या गुण है जिसके अनुसार किसी को सही–सही सामाजिक प्रतिष्ठा मिले। डॉ. अंबेडकर की सामाजिक धारणा के मुख्य तत्व इस प्रकार हैं– सम्मान पूर्वक रहे और रहने दे, सभी का को मान–सम्मान मिले, किसी के प्रति हिंसा न की जाए, स्थाई अथवा तथाकथित स्वाभाविक वर्गों में बांटे बिना प्रत्येक को अपना विवेकपूर्ण हिस्सा मिले, संवैधानिक शासन के प्रति निष्ठा पूर्वक रहना, विधि के समक्ष समता और समान अधिकारों की स्वीकृति, संवैधानिक कर्तव्यों का निर्वाह, सामाजिक दायित्व और विधिक कर्तव्यों का अनुपालन, बेगार तथा भुखमरी से बचाव, कुछ प्राथमिकताओं सहित सभी को समान अवसर की सुलभता, संपत्ति– शिक्षा की उपलब्धता, और अंततः न्याय, स्वतंत्रता, समता, भातृत्व तथा राष्ट्रीय एकता सहित मानव व्यक्तित्व की गरिमा। डॉ आंबेडकर की दृष्टि में सामाजिक न्याय के सिद्धांत का सीधा संबंध भारत की अखंडता से है, अर्थात इस मातृभूमि में रहने वाले सभी नागरिक भाई–भाई हैं चाहे वह हिंदू मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, यहूदी, बौद्ध तथा पारसी हो। इस प्रकार बाबासाहेब आंबेडकर के अनुसार सामाजिक न्याय का विचार लोगों में मात्र राष्ट्रीय भौतिक लाभों का न्यायोचित वितरण ही नहीं है अपितू वह मूलतः ऐसी जीवन पद्धति का समर्थक है जो पारस्परिक मान–सम्मान मैत्री भाव, समान नागरिक होने की उत्कंठा, राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में न्यायोचित भागीदारी इत्यादि पर आधारित हो। अतः सामाजिक न्याय का मानदंड मात्र भौतिक प्रगति नहीं है, मात्र शारीरिक भूख प्यास मिटा देना ही नहीं है, कुछ सुख सुविधाएं या सरकारी नौकरियां देना ही नहीं है बल्कि इससे भी अधिक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि भारत के नागरिकों अथवा सभी वर्गों और धर्मों के लोगों के बीच उन मानव मूल्यो तथा आधारों की बहुलता है जिनसे समाज की व्यवस्था न्यायोचित बने और राष्ट्रीय जीवन समता व समरसता की दिशा में अभिव्यक्त हो।

अंबेडकर और उनकी न्याय दृष्टि

दलितों के महान मुक्तिदाता और भारतीय संविधान के निर्माता डॉ. भीमराव अंबेडकर का निधन हुए लगभग 66 वर्ष हो चुके हैं फिर भी भारतीय समाज पर उनके विचारों का गहरा प्रभाव कायम है वह भारत के पहले कानून मंत्री बने और संविधान बनाने में प्रमुख भूमिका निभाई जीवन में जो कुछ भी उन्होंने प्राप्त किया और जो कुछ उन्होंने किया उसके लिए उन्हें बहुत सारी कठिनाइयों से गुजरना पड़ा। जीवन भर जिन कठिनाइयों से वे गुजरे उसने उनके चिन्तन पर गहरा असर डाला। इस स्थिति में उन्हें उन सिद्धांतों को पूरी तरह से बदल देने के बारे में सोचने के लिए बाध्य किया जिस पर भारत में न्याय का विचार टिका हुआ था। भारत के राजनीतिक चिंतन में न्याय का आदर्श भेदभावकारी होना शामिल था, उदाहरण के लिए जाति व्यवस्था के अंतर्गत ऊंच–नीच की व्यवस्था। भारत के संविधान की प्रस्तावना का प्रारूप डॉ. अंबेडकर ने तैयार किया था, प्रस्तावना सभी नागरिकों के लिए सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय दिलाने का वादा करती है, सबके लिए सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय अंबेडकर के विचार के प्रमुख आधार हैं।

न्याय की अवधारणाः–

एक न्यायपूर्ण समाज की जरूरतों को पूरा करने के लिए कानून तैयार किया जाता है। कानून न्याय पूर्ण समाज बनाने के लिए एक प्रक्रिया के रूप में काम करता है, कानून को ठीक तरीके से लागू करने या उसे व्यवहार में उतारना न्यायपूर्ण समाज बनाने की अनिवार्य जरूरत है या आवश्यकता है। हालांकि कानून न्याय का केवल एक पक्ष है। राबर्ट नोजीक जैसे प्राकृतिक अधिकारों के समर्थक राज्य की कम से कम भूमिका की बात करते हैं। उपयोगितावाद में 'अधिकतम लोगों की अधिकतम खुशी' को न्याय का पैमाना माना जाता है। न्याय के सिद्धांत के विकास में सबसे बड़ा परिवर्तन जॉन रावल्स का हिंदू समाज का आधार इसका भेदभाव ही है, यह अन्य धर्मों को कैसे सहन कर सकता है, जब वह किसी अन्य जाति से संबंधित हिंदू को ही सहन नहीं कर पाता। हिंदू समुदाय केवल उसी समय एकजुट होता दिखता है जब अन्य महत्वपूर्ण धार्मिक समुदायों में से किसी एक के खिलाफ दंगा भड़क उठता है। अल्पसंख्यकों के अधिकारों के प्रति अंबेडकर का गहरा सरोकार था। अल्पसंख्यक किन किन समस्याओं का सामना करते हैं, इस संदर्भ में अपनी राय उन्होंने साइमन कमीशन और तीसरे गोल में सम्मेलन में प्रस्तुत अपने ज्ञापन में प्रकट किया है। बहुसंख्यक संप्रदाय बहुल इलाके में अल्पसंख्यकों को किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है वह इससे परिचित थे, इसी कारण से उन्होंने व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और नौकरशाही में अल्पसंख्यकों के उचित प्रतिनिधित्व की मांग की थी।

राजनीतिक दर्शन में न्याय को सबसे महत्वपूर्ण साधन माना जाता है, न्याय के सिद्धांत के बारे में सोचने की विभिन्न धाराएं हैं। न्याय संबंधी विभिन्न अवधारणाएं इस बात पर निर्भर करती है कि कब और कहां पैदा हुई हैं। प्राचीन काल में पैदा हुई है आधुनिक काल में उनका जन्म पश्चिम में हुआ है या पूरब में। न्याय के संबंध में ग्रीक चिंतन सबसे पुराना और प्रभावी भी है। प्राचीन राजनीतिक चिंतन न्याय को एक नैतिक मूल्य के रूप में चिन्हित करता है। इसी के चलते ग्रीक चिंतन न्याय को नैतिक दर्शन का हिस्सा मानता है। राजा या राज्य को पवित्र शक्ति के रूप में चित्रित किया जाता था और माना जाता था कि इन्हीं में न्याय का वास है। प्लेटो और अरस्तू यह मानते थे कि न्यायपूर्ण समाज ही अच्छा समाज होता है। प्लेटो न्याय को बुद्धिमान व्यक्ति के एक नैतिक मूल्य के रूप में देखते थे। उनके अनुसार कोई भी आदर्श राज्य बिना न्याय के संभव नहीं है। अरस्तु न्याय को निष्पक्षता और समता के बराबर ठहराते थे। भारत में राजनीतिक चिंतन में न्याय को क्रमशः मनु की मनुस्मृति और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में देखा जा सकता है। इसमे भी न्याय को एक नैतिक गुण या धर्म के रूप में माना गया था।

समता का अधिकारः—

जाति व्यवस्था पर चोट करते हुए डॉ. अंबेडकर ने लिखा है कि— हिंदू समाज ने अपनी महिलाओं को समान अधिकारं देने से सदैव इनकार किया गया है। वे सती प्रथा और बाल विवाह की भर्त्सना करते थे, और हिंदू परिवार व्यवस्था के पुनर्गठन की अपनी दृष्टि के अनुसार विधवाओं के पुनर्विवाह के पक्ष में तर्क देते थे। हिंदू कोड बिल में अंबेडकर ने संपत्ति का अधिकार पुरुष और स्त्री दोनों उत्तराधिकारियों को देने का प्रावधान किया है। 18 जुलाई 1927 को उत्पीड़ित वर्ग की लगभग 3000 महिलाओं की एक सभा को संबोधित करते हुए अंबेडकर ने कहा कि किसी समुदाय की प्रगति को उस वर्ग की महिलाओं की प्रगति से मापा जा सकता है। उन्होंने लड़कियों की शिक्षा एंव महावारी के संदर्भ में महिलाओं की गरिमा की रक्षा, तलाक भक्ता इत्यादि का समर्थन किया हैं। अंबेडकर पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव को गहराई से महसूस करते थे और उन्होंने लैंगिक न्याय के लिए आह्वान भी किया। वह लोगों को जाति, लिंग, धर्म के आधार पर हो रहे शोषण एवं असमानता से मुक्ति दिलाना चाहते थे। यही उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य था।

श्रमिकों के लिए कानूनः—

डॉ. अंबेडकर ने श्रमिकों की जिंदगी को बेहतर बनाने के लिए उनके संघर्षों में अपने आप को जोड़ा। उन्होंने श्रमिकों के कल्याण के लिए 1936 में इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी का गठन किया, उन्होंने श्रमिकों के जीवन स्थितियों को बेहतर बनाने के लिए सुधार का बिल 1944 में प्रस्तुत किया । यह बिल एक कारखाने में निश्चित समयावधि तक निरंतर काम करने वाले श्रमिकों को मजदूरी सहित छुट्टी का अधिकार देता है। न्यूनतम मजदूरी, काम के बेहतर हालात, काम के घंटे कम करने, इत्यादि मामलों में श्रमिकों को उनके मालिकों से न्याय मिले अंबेडकर ने इसके लिए अत्यधिक प्रयास किया। अंबेडकर ने श्रमिकों के अधिकार के संदर्भ में मूल प्रावधान क्या हो सकते हैं इसे प्रस्तुत किया। अंबेडकर ने देखा कि जाति व्यवस्था न केवल श्रम विभाजन करती है, बल्कि श्रमिकों का भी विभाजन करती है। जाति व्यवस्था एक व्यक्ति के पेशे के विकल्प को सीमित करती है और निम्न श्रेणी के श्रमिकों द्वारा किए जाने वाले काम को नीच काम ठहराती है। अंबेडकर पूंजीवाद को भी श्रमिकों के शोषण की एक व्यवस्था मानते थे, अंबेडकर ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद को अपने आंदोलन के दो जुड़वा दुश्मन मानते थे। अंबेडकर भारतीय समाज में न्याय के संदर्भ में भेदभाव के मुख्य कारक के रूप में जाति व्यवस्था को देखते थे। समाज में पैदा हुई किसी प्रकार की असमानता न्याय में भेदभाव पैदा कर सकती है। अंबेडकर न्याय की अवधारणा के मुख्य तत्व के रूप में जिस स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को पेश करते थे, जाति उन्हीं मूल सिद्धांतों का उल्लंघन करती थी। दलितों, महिलाओं, अल्पसंख्यकों और श्रमिकों के अधिकारों का जाति व्यवस्था के भीतर उल्लंघन होता है। अंबेडकर इस बात को रेखांकित करते हैं कि, न्याय की अवधारणा अधिकारों पर आधारित होती है और किसी देश का संविधान अधिकारों को संरक्षण प्रदान करता है। अंबेडकर का वितरणात्मक न्याय का सिद्धांत जाति विहीन समाज पर आधारित है उनके न्याय की अवधारणा इस अर्थ में समतावादी थी कि वे चाहते थे कि सभी व्यक्तियों के साथ समान तरह से व्यवहार किया जाए। इसके विपरीत जाति व्यवस्था लोगों के साथ उनको प्रदान किए गए सामाजिक स्तरो के आधार पर अलग—अलग व्यवहार करती है। इसमें सभी सामाजिक और आर्थिक चीजों का बंटवारा श्रेणी क्रम की व्यवस्था पर आधारित है। उनका सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि कैसे न्याय समाज में मौजूद असमानता की स्थिति का मुकाबला करता है।

न्याय और जाति व्यवस्थाः—

डॉ. अंबेडकर तीखे तरीके से जाति व्यवस्था का विरोध करते थे। इस विषय पर उनकी सबसे प्रसिद्ध किताब 'जाति का उच्छेद है'—यह विडंबना की ही बात है इस युग में भी 'जातिवाद'के पोषको की कमी नहीं है। इसके पोषक कई आधारों पर इसका समर्थन करते हैं। समर्थन का एक आधार यह कहा जाता है कि आधुनिक सभ्य समाज 'कार्य—कुशलता' के लिए श्रम—विभाजन को आवश्यक मानता है, और चुंकि जाति प्रथा भी श्रम विभाजन के साथ श्रमिक विभाजन का भी रूप

लिए हुए हैं। श्रम विभाजन निश्चय ही सभ्य समाज की आवश्यकता है, परंतु किसी भी सभ्य समाज में श्रम विभाजन की व्यवस्था श्रमिकों का विभिन्न वर्गों में अस्वाभाविक विभाजन नहीं करती। भारत की जाति प्रथा की एक और विशेषता यह है कि यह श्रमिकों का अस्वाभाविक विभाजन ही नहीं करती, बल्कि विभाजित विभिन्न वर्गों को एक दूसरे की अपेक्षा ऊंच–नीच भी करार देती है, जो कि विश्व के किसी भी समाज में नहीं पाया जाता है।12 हर जाति का अपना वंशानुगत पेशा होता है, किसी जाति विशेष के एक सदस्य को किसी दूसरी जाति विशेष के पेशे को अपनाने की अनुमति नहीं है। एक जाति द्वारा दूसरी जाति में शादी–विवाह करने और खान–पान पर रोक है। ब्राह्मण को शिक्षा पाने, शिक्षा देने और मंदिरों के अनुष्ठानो को संपन्न कराने का अधिकार है। जाति व्यवस्था को धर्म शास्त्रों का पुरजोर समर्थन प्राप्त है, इसी के चलते अंबेडकर ने कहा था कि जिन धार्मिक विचारों पर जाति व्यवस्था आधारित है उसका उच्छेद किए बिना जाति व्यवस्था को तोड़ना संभव नहीं है। जाति व्यवस्था स्पष्ट तौर पर स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों का उल्लंघन करती है। यह एक व्यक्ति से अपने लिए अपना स्वयं का पेशा चुनने के अधिकार को छीन लेती है। एक व्यक्ति की उसी जाति के प्रति निष्ठा होती है जिसमें वह जन्म लेता है या लेती है। जाति व्यवस्था के भीतर सहानुभूति और प्रेम के लिए कोई जगह नहीं है। जाति व्यवस्था के भीतर निष्पक्ष ढंग से व्यवहार करने के लिए कोई गुंजाइश नहीं होती है। इसी कारण से अंबेडकर आरक्षण को सामाजिक सशक्तिकरण का एक उपाय बताते हैं। डॉ. अंबेडकर का मानना था भेद–भाव आधारित धर्म न्याय में बाधक होता है। भारत में विद्यमान अस्पृश्यता जाति व्यवस्था का नकारात्मक प्रभाव उनके चिंतन शैली पर पड़ा परंतु उनकी बहुमुखी प्रतिभा उनके सामाजिक और राजनीतिक चिंतन, आर्थिक विचारों तथा कानून एवं संविधानवाद में परिलक्षित होती है।13 अंबेडकर धर्म के खिलाफ नहीं थे, उन्होंने धर्म का पक्ष लेते हुए एडमंड वर्क को उद्धृत किया है। एडमंड वर्क कहते हैं कि एक सच्चा धर्म समाज का आधार होता है इस पर सभी सच्ची सभ्यताएं टिकी होती हैं। लेकिन हिंदू धर्म को अंबेडकर एक धर्म नहीं मानते थे क्योंकि यह जाति व्यवस्था पर आधारित है और जाति व्यवस्था न्याय के तीनों तत्वो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का निषेध करती है। अंबेडकर मानते थे कि हिंदू धर्म बस आदेशों और निषेधो ;नियमों न की सिद्धांतोंद्ध की संहिता है, जिसे उसने अपने अनुयायियों के लिए जारी किया है।

उपरोक्त डॉ. अंबेडकर के विचार से स्पष्ट होता है कि वह एक ऐसे न्याय पूर्ण समाज का स्वप्न देखते थे, जिसमें महत्ता और सामाजिक स्तर के मामले में सभी व्यक्तियों के साथ समान रूप से व्यवहार किया जाए। वह सामाजिक असमानता और शोषण के कारकों को पूरी तरह से खारिज करते थे। वह मानते थे कि एक व्यवस्था के भीतर समतावादी न्याय सुनिश्चित करने के लिए स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को कायम करने की जरूरत होती है चूंकि जाति व्यवस्था इन तीन बुनियादी तत्वों का उल्लंघन करती है, जिसके चलते यह भारतीय समाज में न्याय के विचार को जड़ जमाने में मुख्य अवरोध है। अंबेडकर के लिए कानून एक ऐसी चीज है जो सबसे वंचित लोगों के अधिकार की गारंटी देता है। अंबेडकर ने जिस हिंदू कोड बिल को संसद में पेश किया था, वह ब्राह्मणवादी कानूनों, हिंदू पारिवारिक सांहिता को खारिज करता है। यह बिल पुत्र और पुत्री दोनों को उनके पिता की संपत्ति में बराबर का अधिकार प्रदान करता है। इस दिल ने एकल विवाह प्रथा और तलाक के मामले में महिलाओं के पक्ष में क्रांतिकारी प्रावधान किए। देश के लिए आजादी प्राप्त करने के संदर्भ में अंबेडकर का नजरिया भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से भिन्न था। इसके चलते ही वे देश की आजादी के आंदोलन से दूर रहे। वे सामाजिक न्याय को राजनीतिक न्याय की पूर्व शर्त की तरह मानते थे। उन्होंने न्याय प्राप्त करने में समानता और क्रांति की अवधारणा में एक वैकल्पिक आयाम प्रस्तुत किया। वे उस तरह कि असमानता के हिमायती थे जिससे हाशिए के समुदायों को फायदा पहुंचता हो, इसे सकारात्मक भेदभाव भी कहा जा सकता है। इसी कारण से उन्होंने पृथक निर्वाचन क्षेत्र का समर्थन किया लेकिन गांधी जी के विरोध के चलते उन्हें इस का परित्याग करना पड़ा। उन्होंने आरक्षण के मसौदे तैयार किए थे जिसका उद्देश्य वंचित समाज के लोगों को सामाजिक और आर्थिक हालात में क्रमिक सुधार करना था। अंबेडकर समाज में बुनियादी परिवर्तन के प्राथमिक कदम के रूप में एक सामाजिक क्रांति कल्पना करते थे। न्याय हासिल करने के लिए क्रांति की अवधारणा के बारे में अंबेडकर का एक–एक था एक भिन्न परिपेक्ष्य था। उनके लिए क्रांति का वही अर्थ नहीं था जो उस समय आम प्रचलन में था खासकर के मार्क्सवादी दायरे में जिस क्रांति की अंबेडकर कल्पना करते थे उसमें खून–खराबे के लिए कोई जगह नहीं थी। उनकी क्रांति बगावत से मुक्त थी, राजनीतिक क्रांति के लिए सामाजिक क्रांति पसंद करते थे। वे लोकतंत्र में विश्वास करते थे और मानते थे कि हिंदू सामाजिक व्यवस्था समाज के लिए अभिशाप है अंबेडकर ने हिंदू समाज के पुनर्निर्माण का विचार प्रतिपादित किया उन्होंने हिंदू सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए उठाए जाने वाले कदमों को सूचीबद्ध किया– जैसे कि पुरोहित वाद का खात्मा इसके अलावा उन्होंने पवित्र धार्मिक ग्रंथों के विनाश का आवाहन किया जैसे कि मनुस्मृति। अंबेडकर की समतावादी न्याय की संकल्पना समाज के वंचित लोगों के फायदे के लिए असामान बर्ताव सकारात्मक भेदभाव की अनुमति देती है। अंबेडकर अधिकारों और कानूनों को न्याय की चाबी के रूप में स्वीकार करते हैं। दूसरी ओर अंबेडकर के लिए जाति व्यवस्था सांप्रदायिकता, पितृसत्ता और श्रमिकों का शोषण एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना में सबसे बड़े अवरोधक थे। वह इस बात पर जोर देते थे कि राजनैतिक और आर्थिक पुनर्निमाण से पहले समाज का सामाजिक पुनर्निर्माण होना जरूरी है क्योंकि उनका मानना था कि सामाजिक न्याय अंतोतगत्वा राजनैतिक और आर्थिक न्याय का मार्ग खोलेगा। हमारा समाज अंबेडकर की न्याय की

संकल्पना को अभी पूरी तरह से अपना नहीं पाया क्योंकि इसने जाति और पितृसत्ता के श्रेणी क्रमो से अपने आप को मुक्त करने से इंकार कर दिया।

संदर्भ ग्रंथः–

1. रॉड्रिक्ज प्रोफेसर वेलेरियन (2013), आधुनिक भारत में सामाजिक और राजनीतिक चिंतन, इग्नू, नई दिल्ली पृष्ठ– 162–63
2. गाबा, ओम प्रकाश, (2011), समकालीन राजनीतिक सिद्धांत, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, पृष्ठ –257
3. लोखंडे, जी. एस., भीमराव रामजी अंबेडकर ए स्टडी इन सोशल डेमोक्रेसी, पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1982, पृष्ठ –62
4. कश्यप सुभाष विश्व प्रकाश गुप्त (2004)राजनीति कोष हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय –पृष्ठ –210
5. कश्यप सुभाष, विश्व प्रकाश गुप्त (2004) राजनीति कोश, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली, विश्वविद्यालय, पृष्ठ संख्या –211
6. भटनागर, राजेंद्र मोहन, (1986) डॉ आंबेडकर : जीवन और दर्शन, दिल्ली, पृष्ठ –175
7. त्यागी, रुचि (संपादक) 2010, भारतीय राजनीतिक चिंतनः प्रमुख अवधारणाएं एवं चिन्तक, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ 362–63
8. अंबेडकर, बी. आर., जातिभेद का उच्छेद, चतुर्थ संस्करण 2008, दिल्ली, पृष्ठ –53
9. लिमये मधु, (2006), बाबा साहब अंबेडकर– एक चिंतन, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, पृष्ठ–76
10. वही पृष्ठ–36
11. वही पृष्ठ–37
12. मिश्रा, एस.एन.(2004)फेसेट्स आफ डॉ. अंबेडकर, आईआईपीए, नई दिल्ली, पृष्ठ– 57
13. अंबेडकर, बी.आर., जातिभेद का उच्छेद, चतुर्थ संस्करण 2008, दिल्ली, पृष्ठ –36